International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 336-339

निघण्टुकोष के कर्मवाचक 'अप्नः, विष्टवी, क्रतु' : पदों का अर्थविषयक विमर्श

घोडके सोमशंकर

शोधार्थी (पीएच्.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

भारत में कोषशास्त्रों में सबसे पुराना ग्रन्थ निघण्टु है जिस पर यास्क ने व्याख्या लिखी है।[1]

इसका मुख्य उद्देश्य उन शब्दों को एकत्रित करना था जो शनैः शनैः अर्थ की दृष्टि से कम ज्ञात होते जा रहे थे। उत्तरकालीन परंपरा में अध्ययन का अभाव भी कारण हो सकता है।

साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवु०।[2]

इस कोष के निर्माण के साथ ही वैदिक अध्ययन का इतिहास प्रारंभ होता है जिसका उपबृंहण यास्क ने वैदिक मन्त्रों को उद्धृत करते हुए कठिन अथवा सामान्य शब्दों की निरुक्तियों के साथ किया।

निघण्टु में वैदिक शब्दों के संग्रह को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है।[3] पाँच अध्याय तीन काण्डों में विभक्त हैं – निघण्टु, नैगम और दैवत। पहले तीन अध्यायों में समानार्थी शब्दों का संकलन है, ये निघण्टु कहलाते हैं। चतुर्थ अध्याय में संग्रहित शब्द अनवगत संस्कार हैं, ये नैगम कहलाते हैं तथा पंचम अध्याय में संग्रहित देवता पर हैं, ये दैवतकाण्ड कहलाते हैं।

वैदिक साहित्य के अनेक भाष्यों में प्रमाण रूप से उद्धृत उल्लेखों से यह भली–भाँति सिद्ध होता है कि वेदार्थ करने में इससे प्राचीन और कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इन भाष्यों में वास्तव में निरुक्त का इतना उल्लेख नहीं हुआ है जितना कि निघण्टु का। यह तथ्य भी निघण्टु के योगदान का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

निघण्टुकोष में पाँच अध्याय हैं। इसमें से प्रथम तीन अध्यायों में कोषकार ने पर्यायवाची, चतुर्थ में ऐकपदिक तथा पंचम में देवतावाची पदों का संकलन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में नैघण्टुक काण्ड के कर्मपदों को शोध का विषय बना कर वैदिक वाङ्मय को हृदयङ्गम बनाने के लिए आचार्य यास्क, दुर्ग, स्कन्द, सायण, वेङ्कटमाधव, स्कन्द महेश्वर, मुद्गल व दयानन्द प्रभृति व्याख्याओं का न केवल अवलोकन किया गया है अपितु निष्कर्षों को सुसङ्गत बनाने के लिए उनको आधार भी बनाया है।

कर्मवाचकनाम पद

निघण्टुकोष के कर्मवाची नामपदों में निघण्टुकार ने 26 नामपदों का परिगणन किया है। यहाँ उक्त गण में समाम्नात अप्नः पद का विवेचन करने का प्रयास किया है –

अप्न

'अप्नः' शब्द निघण्टु के कर्मवाची नामपदों में पढ़ा गया है।[4]

'आप्लृ व्याप्तौ'[5] 'आपः कर्माख्यायां०'[6] असुन् व विकल्प से नुडागम कर अप्नः शब्द बनता है। देवराजयज्वा के अनुसार 'अप्नः' पद का अर्थ इस प्रकार है– जो कर्ता को बढ़ाते हैं अथवा उनके फल को बढ़ाते हैं।

आप्नुवन्ति हि तत् कर्त्तारः, आप्नोति वा तान् फलरूपेण।[7]

ऋग्वेद में कुछ स्थानों पर अप्नः पद का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद में ऋषि कहता है कि 'उषा, तुमने होमार्थ अग्नि प्रज्वलित की है, सूर्य के आलोक से दूर कर दिया है और यज्ञरत मनुष्यों को अन्धकार से मुक्त कर दिया है; इसलिए तुमने देवों का उपकारी कार्य किया है।

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अऽजीगस्तदेवेषु चकृषे भद्रमप्नः।।[8]

उषायें जो कुछ विचित्र और ग्रहण करने योग्य धन लाती हैं, वह यज्ञ सम्पादक स्तोता के कल्याण स्वरूप है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को पूजित करें।

यच्चित्रमप्नउषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिःसिन्धुःपृथिवीउत द्यौः।।[9]

दशम मण्डल में ऋषि लूश विश्वेदेवा से प्रार्थना करते हैं कि जो सब देवता सत्य स्वभाव सूर्य, मित्र और वरुण के कार्यों में उपस्थित रहते हैं, वे हमें सौभाग्य, लोकबल, गाय और पुण्यकर्म दें तथा विविध प्रकार के धन भी दें।

येसवितुःसत्यसवस्यविश्वेमित्रस्यव्रतेवरुणस्यदेवाः।
तेसौभगंवीरवद्गोमदप्नोदधातनद्रविणंचित्रमस्मे।।[10]

एक मन्त्र में कश्यप पुत्र भूतांश अश्विद्वय से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि जैसे लम्बे पैर रहने पर, गम्भीर जल के पार होने के समय आश्रय मिलता है, वैसे ही तुम लोग आश्रय दो। तुम लोग दोनों कानों के समान स्तोता की स्तुति को ध्यान से सुनते हो। दो यज्ञाङ्गों के समान हमारे इस विचित्र यज्ञ में पधारो।

बृहन्तेवगम्भरेषुप्रतिष्ठांपादेवगाधंतरतेविदाथः।
कर्णेवशासुरनुहिस्मराथोंऽशेवनोभजतंचित्रमप्न।।[11]

अप्नः पद का अर्थ विभिन्न आचार्यों के मत से

तालिका 1

ऋग्वेद मंत्र संख्या	स्कन्दस्वामी	उव्वट	वेंकटमाधव	सायण	मुद्गल	दयानन्द
1/113/9	कर्म	–	कर्म	कर्म	कर्म	अपत्यम्
1/113/20	–	–	कर्म	आप्तव्यम्	आप्तव्यम्	अपत्यम्
10/36/13	–	कर्म च यज्ञरूपम्	कर्म	कर्म	–	–
10/09/9	–	–	कर्म	कर्म	–	–

उपर्युक्त तालिका का विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि यद्यपि प्रायः सभी व्याख्याकारों ने उक्त पद को कर्म अर्थ में व्याख्यायित किया है परन्तु उव्वटाचार्य ने उक्त पद को यज्ञ का रूप माना है। सायणाचार्य भी एक स्थान पर आप्तव्यम् करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऐसे कर्म जो उपकारक हों अप्नः कहलाते हैं।

विष्ट्वी

विष्ट्वी पद निघण्टुकोष के कर्मवाची नामों में पठित है।[12] विष्ट्वी पद का अर्थ आचार्य यास्क 'कृत्वा' करते हैं।[13] आचार्य दुर्ग भी अपनी टीका में कहते हैं कि ''कर्म यतोऽजामितायै भाष्यकारः पूर्वं तावन्निराह कृत्वा इति। किं कृत्वा शमी कर्माणि।।''[14]

परन्तु इसी पद पर आचार्य देवराजयज्वन् निर्वचन में कहते हैं 'वेवेष्टि व्याप्नोति कर्तृन्, व्याप्तं विस्तृतं वा। यद्वा वेवेष्टि इत्यत्तिकर्मसु (निरुक्त 2/8) पठ्यते। परिवेवेष्टि भोजयति स्वफलं कर्तृन्।'[15] इस पक्ष में ''विप्लृ व्याप्तौ''[16] धातु से औणादिक क्विन्[17] प्रत्यय कर 'विष्ट्वी' पद निष्पन्न होता है।

ऋग्वेद में कुछ ही स्थानों पर विष्ट्वी शब्द का अनुप्रयोग उपलब्ध होता है

ऋभुओं ने शीघ्र कर्मानुष्ठान किया था एवं ऋत्विकों के साथ मिले थे, इसलिए मनुष्य होकर भी अमरत्व प्राप्त किया था। उस समय सुन्धवा के पुत्र ऋभु लोग सूर्य की तरह दीप्तिमान होकर सांवत्सरिक यज्ञों में हव्याधिकारी हुए।[18]

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासःसन्तोअमृतत्वमानशुः।
सौ धन्वनाऋभवःसूरचक्षसःसंवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः।।

एक मन्त्र में अर्वुद् ऋषि सोम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये पत्थर सौ वा सहस्र व्यक्तियों के समान शब्द करते हैं। ये सोम–संसर्ग से हरित वर्ण मुखों से देवों को बुलाते हैं। शोभनकर्मा ये पत्थर यज्ञ को पाकर देवाह्वाहन करने वाले अग्नि के पूर्व ही भक्षणीय हवि को पाते हैं।[19]

एतेवदन्तिशतवत्सहस्रवदभिक्रन्दन्तिहरितेभिरासभि।
विष्ट्वीग्रावाणःसुकृतसुकृत्ययाहोतुश्चित्पूर्वेहविरद्यमाशत।।

विश्वामित्र एक मन्त्र में कहते हैं कि मनुष्य पुत्र ऋभुगण ने यागादि कर्म करके इन्द्र के सखित्व को प्राप्त किया है। पूर्व में मरण धर्म होकर भी इन्द्र के सखित्व से प्राण धारण करते हैं। सुधन्वा से पुण्य–कार्यकारी पुत्रगण कर्मबल और यज्ञादि–बल से व्याप्त होकर अमृतत्त्व को प्राप्त हुए हैं।[20]

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिःसुकृतः सुकृत्यया।।

विष्ट्वी पद का अर्थ विभिन्न आचार्यों मत से

तालिका 2

ऋग्वेद मंत्र संख्या	1/110/4	3/60/3	10/94/2
यास्काचार्य	कृत्वा	–	–
दुर्गाचार्य	कर्म यतोऽजा मितायै भाष्यकारः पूर्वं तावन्नि राह कृत्वा इति। किं कृत्वा शमी कर्माणि		
स्कन्द स्वामी	इति न कर्म नाम शमी इत्येनेन पौनरुक्त प्रसंगात्। विषेर्व्या स्यर्थस्य क्रियाशब्दोऽयं विष्ट्वीति। विष्ट्वा व्याप्त्य कृत्वेत्यर्थः	–	–
स्कन्दमहेश्वर	नैरुक्तपक्षे विष्ट्वीति नेदं कर्मनामात्र गृह्यते किन्तु विषेर्व्याप्त्यर्थस्य क्रियाशब्दोऽयम्	–	–
वेंकटमाधव	कृत्वा	–	यज्ञं व्याप्य ग्रावाणः
सायण	व्याप्य कृत्वेत्यर्थ	व्याप्य	यज्ञं व्याप्य ग्रावाणः
मुद्गल	व्याप्य कृत्वेत्यर्थः एवं कर्माणि कृत्वा	कर्म	–
दयानन्द	व्यापनशीलानि	–	–

तालिका पर विहंगावलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी भाष्यकारों ने यहाँ तक कि स्वयं यास्क भी उक्त पद को आख्यात के अर्थ में व्याख्यायित करते हैं। कोई भी भाष्य कर्त्ता इसे कर्म–वाचक नाम अर्थ में नहीं कहता है। अतः विष्ट्वी पद का कर्मनाम वाचक अर्थ प्रयोग अन्वेषणीय है।

क्रतु

क्रतुः शब्द निघण्टुकोष के कर्मवाची नामपदों में पठित है। आचार्य देवराजयज्वन् क्रतुः का निर्वचन करते हुए कहते हैं 'क्रियतेः द्विजातिभिः'। अर्थात् जो द्विजातियों द्वारा किया जाता है। इस पक्ष में कृ धातु[21] से औणादिक कतुप्रत्यय[22] कर क्रतुः पद सिद्ध होता है।

ऋग्वेद में उक्त पद का पर्याप्त प्रयोग मिलता है

मेधातिथि काण्व कहते हैं कि असंख्य धनदाताओं में इन्द्रदेव दाता और देवों में वरुण स्तुति पात्र हैं।[23]

इन्द्रः सहस्र दाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः।।

पराशर शाक्य ऋषि अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं 'दुष्प्राप्य तेजा अग्नि यज्ञकारी की तरह ध्रुव और गृहस्थित गृहिणी की तरह घर के भूषण हैं।

दुरोकशोचिः क्रतुर्ननित्यो जायेवयोनावरं विश्वस्मै।।[24]

अग्नि पालक की तरह कर्म साधक कर्मशील की तरह भद्र, देवों को बुलाने वाले और हव्य वाहक हैं। अग्नि शोभन कर्मा बनो।

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।।[25]

अग्नि यज्ञकर्ता है, अग्नि संसार के उपसंहारक और जनयिता हैं। सखा की तरह अलब्ध धन देते हैं। देवाभिलाषी प्रजागण उस दर्शनीय अग्नि के समीप जाकर अग्नि को ही यज्ञ का प्रथम देवता मानकर स्तुति करते हैं।

स हि क्रतुःस मर्यःस साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विशउप ब्रुवते दस्ममारीः।।[26]

गौतम ऋषि सोम स्तुति करते हुए कहते हैं कि सोम तुम सत्कर्म में ब्राह्मण के अधिपति हो। तुम राजा हो। तुम शोभन यज्ञ हो।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रोअसि क्रतुः।।[27]

विश्वामित्र ऋषि इन्द्र का वर्णन करते हुये कहते हैं कि हे पुराकाल से प्रसिद्ध इन्द्र, हमारे इस पुरोदश का प्रातःसवन में सेवन करो, जिससे तुम्हारा कर्म महान हो।[28]

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः। इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन्।।

क्रतुः पद का अर्थ विभिन्न आचार्यों के मत

तालिका 3

ऋग्वेदमंत्र संख्या	स्कन्द स्वामी	वेंकटमाधव	सायण	मुद्गल	दयानन्द
1/17/5	कर्त्ता	–	धनदानस्य कर्त्ता भवति प्रभूतं ददातीत्यर्थः	धनदानस्य कर्त्ता भवति	करोति कार्याणि येन सः
1/66/5	क्रतुः कर्म प्रज्ञा वा	प्रज्ञ इव अनुस्यूतः	क्रतुः कर्मणां कर्त्ता	क्रतुः कर्माणां कर्त्ता स इव ध्रुवः। यथा सः कर्मसु ध्रुवोऽप्रमत्तः सन् जागर्ति तद्वदयमग्निः	प्रज्ञ कर्म वा
1/67/2	विज्ञानमेव च भद्रपुरुषः	कर्मेव	क्रतुः कर्मणा कर्त्ता सः	क्रतुः कर्मणा कर्त्ता सः	प्रशस्त कर्म प्रज्ञ
1/77/3	कर्त्ता प्रज्ञानरूपो वा	कर्त्ता	कर्मणां कर्त्ता	कर्मणांकर्त्ता	प्रज्ञा कर्मयुक्तः प्रज्ञानकर्म ज्ञापको वा
1/91/5	कर्त्ता सर्वाथानाम्	–	योऽयमग्निष्टोमादि यागः	योऽयमग्निष्टोमादियागः	प्रज्ञामयः प्रज्ञापदः प्रज्ञाहेतुर्वा

उपर्युक्त अर्थों को आधार पर हम कह सकते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्रों में प्रयुक्त क्रतुः पद का अर्थ प्रायः सभी व्याख्याकार कर्म के कर्ता के रूप में करते हैं। केवल सायण और दयानन्द ही कुछ मन्त्रों की व्याख्या में कर्म परक अर्थ करते हैं।

निष्कर्ष

निघण्टुकोष के द्वितीय अध्याय के कर्मवाचक नामखण्ड में 26 पद हैं, जिनमें कुछ पदों का विवरण केवल ऋग्वेद में प्रयुक्त मन्त्रों व उसके भाष्यकारों के भाष्य के आधार पर किया गया है। प्रस्तुत पत्र में केवल ''अप्नः'', ''क्रतुः'', व ''विष्ट्वी'' पदों का ही अध्ययन किया गया है। उक्त पदों का सीमित प्रयोग ही ऋग्वेद में प्राप्त होता है।

तीनों पदों का अर्थ के विषय में कुछ स्थानों पर विद्वानों में मतैक्यता और कुछ स्थानों पर भिन्नता भी प्रतीत होती हैं। यद्यपि व्याख्याकार इनका भिन्न–भिन्न अर्थ करते हैं, परन्तु निघण्टुकार निघण्टुकोष में एक निश्चित अर्थ में ही इनका पाठ करते हैं। अतः यह अन्वेषणीय है। इस विषय में यह आकलन किया जा सकता है कि जिस वैदिक साहित्य में इन पदों का परिगणन किया था, वह आज अनुपलब्ध है। परन्तु विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता दिखाई देता है कि वैदिक साहित्य में अधिकांश पद प्रयुक्त है, परन्तु जिस अर्थ में निघण्टुकोष में परिगणित किये गये हैं, उनका उससे भिन्न अर्थ में प्रयोग है। ऋग्वेद से इतर उपलब्ध वैदिक साहित्य का परिशीलन कर निघण्टुकोष के पदों का कोषगत अर्थ ज्ञात करने के लिये अभी और अनुसन्धान करने की संभावना है।

सन्दर्भ

1. Verma, Siddheshwar, PAIC I. Poona, 1919, page no. 68,
   Karmaker, R.F., PAICD I, page no. 62,
   Keith, A.B., History of Sanskrit Literature, page no. 412.
2. निरु. 1/20
3. Rajvade, V.K., Yaka's Nirukta, BORI, Poona, 1940.
4. निघण्टु 2.1।
5. स्वादिगण परस्मैपद 15।
6. उणादिकोष 4.209
7. निघण्टु निर्वचनम् 2.1
8. ऋक् 1.113.09
9. ऋक् 1.113.20
10. ऋक् 10.036.13
11. ऋक् 10.106.09
12. निघण्टु 2.1
13. निरुक्त 11.16
14. निरुक्त टीका 11.16
15. निघण्टु वृत्ति 2.1.4
16. धातुपाठ जुहोत्यादि गण उभ० 13
17. उणादि० 4.55
18. ऋक् 1.110.04
19. ऋक् 10.094.02
20. ऋक् 3.060.03
21. धातुपाठ तनादि. उभ. 10

22. उणा. 1/76
23. ऋक् 1.017.05
24. ऋक् 1.066.05
25. ऋक् 1.067.01
26. ऋक् 1.077.03
27. ऋक् 1.091.05
28. ऋक् 3.052.04